E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
IJPSG 2019; 1(2): 17-20
Received: 11-05-2019
Accepted: 15-06-2019

कुमार सौरभ
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत।

नेहा गुप्ता
शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत।

Corresponding Author:
कुमार सौरभ
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत।

भारतीय लोकतन्त्र एवं जातिवादी राजनीति

कुमार सौरभ, नेहा गुप्ता

सारांश
भारतीय संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था प्रारम्भ से ही वर्गों में विभाजित रही है। कर्म प्रधान 'वर्ण व्यवस्था' पर आधारित समतामूलक समाज समय के साथ जन्म आधारित 'जातिवाद' का रूप ग्रहण करनें के साथ–साथ 'जातीय श्रेष्ठता', 'सामाजिक असमानता' एवं 'छुआछूत' जैसी बुराइयों को आत्मसात् करता गया, जिसके उन्मूलन हेतु भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के समानान्तर विभिन्न आन्दोलन चलाये गये। किन्तु भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत 'परम्परावादी भारतीय समाज में आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना के प्रयत्न' के फलस्वरूप जातियों के राजनीतिकरण को अधिक बल मिला। इसी कड़ी में स्वतंत्रता पूर्व ही जाति आधारित विभिन्न संगठनों यथा– ब्राह्मण सभा, कुर्मी संगठन, जाट सभा, बहिष्कृत हितकारिणी सभा आदि स्थापित की गयी। स्वतंत्रता उपरान्त भारतीय राजनीति में 'राष्ट्रवाद' एवं 'लोक–कल्याण' के प्रभाव में 'जातिवादी भावना' कुछ समय के लिए शिथिल तो हो गयी किन्तु आगे चलकर छोटी जातियों की उम्मीदें क्षीण हानें के साथ–साथ पिछड़े, दलित एवं उपेक्षित वर्गों में 'राजनीतिक चेतना', 'नेतृत्व क्षमता' एवं 'सत्ता की आकांक्षा' भी विकसित हुयी। ऐसी स्थिति में राजनीतिक दलों द्वारा प्रमुख जातियों को 'वोट बैंक' के रूप में इस्तेमाल एवं 'तुष्टीकरण की राजनीति' प्रारम्भ हुई। राजनीतिक संक्रमण के दौर में जाति आधारित विभिन्न राजनीतिक दलों– बहुजन समाज पार्टी (बसपा), समाजवादी पार्टी (सपा), राष्ट्रीय जनता दल आदि का उदय हुआ। उत्तर प्रदेश में बसपा व सपा जाति आधारित बड़े दलों में से हैं। सामान्यतः भारतीय लोकतंत्र में जातियाँ चुनाव प्रचार के साधन के रूप में, समाज में श्रेष्ठता सिद्ध करने के रूप में तथा दबाव समूह की भूमिका में देखी जाती हैं। जहाँ 'विविधता में एकता' को भारतीय संघ की खूबसूरती के रूप में देखा जाता है तो वहीं 'जातिवाद' भारतीय समाज में एक विकलांगता की तरह है जो भारतीय राष्ट्रवाद की सबसे कमजोर कड़ी में से है।

मूल शब्दः जातिवाद, वर्ण व्यवस्था, राजनीतिक चेतना तथा राष्ट्रवाद।

प्रस्तावना
स्वतंत्रता पूर्व भारत में जातिगत आन्दोलन
भारतीय समाज में जाति का दायरा बहुत विस्तृत हैं इसके अन्तर्गत न केवल विभिन्न जातियाँ बल्कि विभिन्न वर्ग एवं जातियों के समूह भी समाहित हैं। अंग्रेजों के आने के पश्चात् भारतीय समाज में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन आए, जिसके प्रभाव में जाति व्यवस्था
गड्मड्ड हो गयी। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा आरम्भ की जिसके द्वार सभी के लिए खुला रखा गया। अंग्रेजों के आने से भारत में राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक गतिशीलता भी आरम्भ हुई, भारत में आधुनिकीकरण का दौर प्रारम्भ हुआ। आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया को एम0एन0 श्री निवास 'सांस्कृतिकरण' एवं 'पाश्चात्यीकरण' के रूप में सम्बोधित करते हैं। आधुनिक भारतीय राजनीतिक व्यवस्था एक विस्तृत सामाजिक व राजनीतिक आन्दोलन की परिणति रही हैं, जिसमें न केवल भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन बल्कि अन्य प्रमुख सामाजिक आन्दोलन यथा–महार सत्याग्रह, नामशूद्र आन्दोलन, द्रविड़ मूल आन्दोलन, सतनाम आन्दोलन आदि सभी भी सम्मिलित किये जाते हैं, जिसका विस्तृत प्रभाव भारतीय संविधान में उपबन्धित 'सामाजिक न्याय की संकल्पना' में परिलक्षित होता है। भारतीय राजनीति में प्रारम्भ से ही दलित एवं पिछड़े वर्ग की स्थिति हाशिए पर थी किन्तु डॉ0 अम्बेडकर द्वारा नेतृत्व प्रदान किये गये विभिन्न सामाजिक आन्दोलन तथा भारत में 'साम्प्रदायिक घोषणा' व सन् 1932 के पूना पैक्ट ने भारतीय राजनीति में दलित वर्गों हेतु सीटों के आरक्षण का मार्ग प्रशस्त किया। इसी दौर में महात्मा गाँधी द्वारा समाज के उच्च वर्ग/उच्च जातियों को 'छुआछूत' जैसी सामाजिक कुप्रथा से अवगत कराया गया तथा दलित वर्ग के प्रति हो रहे अन्याय का निरन्तर विरोध भी किया गया। इसके अतिरिक्त भारत में जातिगत असमानता के निराकरण में स्वामी विवेकानन्द, पेरियार, महात्मा ज्योतिबा फूले, नारायण गुरु आदि विचारों का प्रभाव भारतीय राजनीति पर स्पष्टतः देखे जा सकते हैं।

भारतीय राजनीति पर जाति व्यवस्था का प्रभाव

प्रो0 रूडोल्फ का मानना है 'भारत में राजनीतिक लोकतंत्र के सम्बन्ध में जाति वह धुरी है जिसके माध्यम से नवीन मूल्यों एवं तरीकों की खोज का जा रही है, यथार्थ में यह एक ऐसा माध्यम बन गयी है, जिसके जरिये भारतीय जनता को लोकतन्त्रिक राजनीतिक प्रक्रिया से जोड़ा जा सकता है।' जातिगत राजनीति भारतीय लोकतंत्र में न केवल निम्न वर्ग की जातियों तक सीमित रही बल्कि समाज के उच्च वर्गों के मध्य भी राजनीतिक संघर्ष देखा जाता रहा है। भारतीय लोकतन्त्र में समय के साथ जातिगत राजनीतिक संघर्ष का स्वरूप बदलता गया। भारतीय राजनीति में जाति व्यवस्था के इस संक्रमण को रजनी कोठारी तीन स्तर में विभाजित करते हैं, यथा– प्रारम्भिक स्तर पर शासन, शक्ति एवं उससे सम्बद्ध लाभ ब्रिटिश काल में उच्च वर्गों जैसे राजा, महाराजा एवं समाज के प्रभावशाली वर्ग के हाथों में रहा है। किन्तु अब कुछ अन्य वर्ग भी उभर रहे हैं तथा सत्ता के इस संकेन्द्रण को चुनौती दे रहे हैं। द्वितीय स्तर पर संघर्ष का स्तर और बढ़ जाता हैं जिसके परिणामस्वरूप मध्यम वर्ग उभर कर सामने आता है तथा सत्ता का निरन्तर विस्तार होता है। स्वतंत्रता के समय कांग्रेस पार्टी का स्वरूप इस स्तर की विशिष्टताओं को स्पष्ट करती है। तृतीय स्तर पर स्वतंत्रता के उपरान्त भारत में सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्तर बिल्कुल बदल गया है। राजनीतिक क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया है। सभी को समान मताधिकार (वयस्क मताधिकार) प्राप्त हैं तथा भारत में एक समतामूलक समाज की स्थापना की गयी, जिसके परिणामस्वरूप भारत में जाति का दायरा और अधिक विस्तृत हो गया है। रूडोल्फ का मानना है कि भारत में सामाजिक रूप से जातियाँ कमजोर हुई हैं, आज 'कर्म आधारित सहकारिता की भावना' का विलोप हो गया है तथा यह जातिगत भावना राजनीतिक प्रतिस्पर्धा का रूप ग्रहण कर ली है।

स्वतंत्रता उपरान्त भारत में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय की संकल्पना के साथ एक समतामूलक समाज की स्थापना की गयी। सभी को समान मताधिकार (वयस्क मताधिकार), विधि के समक्ष समता, अवसर की समानता, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म व उपासना की स्वतंत्रता की भावना के साथ एक लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की गयी। संविधान के माध्यम से अनुसूचित जाति व जनजाति को राज्य विधानमण्डल व संसद में स्थान आरक्षित किये गये, जिसे आगे चलकर 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से पंचायतों में विस्तार देने के साथ–साथ महिलाओं तक आरक्षण को विस्तार दिया गया। दूसरे शब्दों में कहें तो विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों द्वारा ब्राह्मण से लेकर शूद्र अर्थात् समाज के सभी वर्ग को एक ही राजनीतिक मंच पर लाकर खड़ा कर दिया गया। संविधान के माध्यम से विभिन्न निम्न जातियों को जो विशेषाधिकार दिये गये उसके परिणामस्वरूप प्रतिस्पर्धा का प्रवाह निम्न जातियों की तरफ हो चला। समय के साथ देखा गया कि विभिन्न जातियों द्वारा खुद को आरक्षित वर्गों में सम्मिलित करने की माँग उठती रही। स्वतंत्रता के प्रारम्भिक दशक में समाज के वंचित एवं पिछड़े वर्ग में सत्ता एवं लोक कल्याणकारी योजनाओं से बड़ी उम्मीदें थी। किन्तु समय के साथ इस वर्ग की सत्ता से उम्मीदें क्षीण होती गयीं, जिसके परिणामस्वरूप न केवल इस वर्ग में सत्ता के प्रति असंतोष उत्पन्न हुआ बल्कि इनमें नेतृत्व क्षमता, महत्वाकांक्षा ने राजनीतिक चेतना व राजनीतिक भी जन्म लिया।

संवैधानिक संरक्षण व सकारात्मक भेदभाव, अस्पृश्यता के उन्मूलन, समान मताधिकार, सभी को चुनाव लड़ने की स्वतंत्रता आदि के परिणामस्वरूप इस वर्ग में आत्मचेतना, आत्मसम्मान व आत्मविश्वास की भावना जागृत हुयी है। राजनीतिक व सामाजिक संक्रमण के इस दौर में इन्दिरा गाँधी द्वारा सन् 1971 के लोकसभा आम चुनाव में 'इन्दिरा लाओ'–'गरीबी हटाओ' का नारा दिया गया तथा कांग्रेस पूर्ण बहुमत के साथ सत्ता में भी आयी किन्तु वर्षों व्यतीत हो जाने के बाद भी भारत की एक बड़ी जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने हेतु विवश है। शासन के प्रति असंतोष के इस दौर में राम मनोहर लोहिया, जय प्रकाश नारायण, चौधरी चरण सिंह, मान्यवर कांशीराम आदि के रूप में आशा की एक किरण दिखायी दी, भारतीय लोकतंत्र में यह वही दौर था जब 'समाजवाद' की अवधारणा जोर पर थी। सन् 1990 में श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व में गठित राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार द्वारा 7 अगस्त सन् 1990 को मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करने की घोषणा की गयी, जिसके परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश व बिहार की राजनीति में व्यापक परिवर्तन हुये तथा लालू प्रसाद यादव, सुश्री मायावती, मुलायम सिंह यादव आदि का राजनीतिक भविष्य चमक उठा।

विभिन्न राज्यों में जातिगत राजनीति का स्वरूप

जातिगत राजनीति भारतीय लोकतंत्र में न केवल निम्न वर्ग की जातियों तक सीमित रही बल्कि समाज के उच्च वर्गों के मध्य भी राजनीतिक संघर्ष देखा जाता रहा है। जैसा कि विभिन्न राज्यों में देखनें को मिलता है, यथा–

भारतीय राजनीति में जातिवादी प्रभाव का पहला दृष्टिकोण हमें तमिलनाडु की राजनीति में देखने को मिलता है। बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में ही तमिलनाडु में ब्राह्मण एवं निम्न जातियों के मध्य सत्ता के लिए संघर्ष चरम पर पहुँच गया, जहाँ मूलतः यह संघर्ष तमिलनाडु की राजनीति से ब्राह्मणवादी वर्चस्व को समाप्त करने को लेकर था। जिसके परिणामस्वरूप तमिलनाडु में रामास्वामी नायकर द्वारा 'द्रविड़ कषगम्' नामक संगठन स्थापित किया गया जो बाद में 'द्रविड़ मुनेत्र कषगम्' के रूप में आगे बढ़ा। इसी कड़ी में सन् 1916 में तमिलनाडु में ही 'जस्टिस पार्टी' का गठन हुआ, जिसका उद्देश्य तमिलनाडु में गैर–ब्राह्मण जातियों के हितों को न केवल संरक्षित करना था बल्कि उनके विकास हेतु सर्वसुलभ मार्ग भी प्रशस्त करना था। ब्राह्मण विरोधी इस आन्दोलन को स्वतंत्रता उपरान्त भी जीवन्त रखा गया जिसमें सी0एन0 अन्नादुराई व कामराज नादर की भूमिका महत्वपूर्ण रही। कर्नाटक, गुजरात आदि जैसे राज्यों में जातिगत राजनीति का स्वरूप कुछ अलग रहा। यहाँ निम्न जातियों के मध्य राजनीतिक सत्ता को लेकर आपसी संघर्ष देखा गया है। गुजरात में पट्टीदार व अन्य जातियों के मध्य पारस्परिक राजनीतिक संघर्ष है। वर्तमान में जिग्नेश मेवाड़ी व हार्दिक पटेल द्वारा गुजरात में जातिगत राजनीति को एक नया मोड़ देने का प्रयत्न किया जा रहा है। हम बात करें कर्नाटक की तो वहाँ मुख्यतः लिंगायत समुदाय व ओकीलीगा जातियों के मध्य एक लम्बा राजनीतिक व सामाजिक संघर्ष देखने को मिलता है। यहाँ वर्तमान में लिंगायत समुदाय द्वारा लिंगायत समुदाय को एक पृथक धर्म के रूप में स्वीकृति प्रदान करने को लेकर आन्दोलन जोरों पर है, जिसने कर्नाटक की राजनीति को एक नया मोड़ दिया है। दूसरे शब्दों में कहें तो इन राज्यों में एक समान निम्न जातियों के मध्य पारस्परिक राजनीतिक संघर्ष रहा है।

बिहार में उच्च जातियों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिण व वैश्य वर्ग का राजनीतिक वर्चस्व लम्बे समय तक बना रहा, जिससे बिहार की विभिन्न पिछड़ी जातियों एवं दलितों में राजनीतिक सत्ता के प्रति आक्रोश एवं राजनीतिक सत्ता की महत्वाकांक्षा बढ़ती गयी। परिणामस्वरूप बिहार में जातिगत राजनीतिक संघर्ष का बहुध्रुवीय विकास हुआ, जिसमें लालू प्रसाद यादव, नितीश कुमार, जीतन राम मांझी आदि के नेतृत्व में राजनीतिक सत्ता के लिए संघर्ष निरन्तर बढ़ता गया। सामान्यतः बिहार में राजनीति के हर स्तर पर जातिवाद एवं साम्प्रदायिक राजनीति एक कटु सत्य बन चुका है।

महाराष्ट्र में जातिगत राजनीति का स्वरूप उपरोक्त सभी

राजनीतिक संघर्षों से भिन्न रहा है। यहाँ वर्षों से चले रहे ब्राह्मणों के राजनीतिक वर्चस्व को तोड़ने के लिए एक प्रकार से मराठा आन्दोलन जागृत हुआ तथा यह आन्दोलन ब्राह्मण मराठा राजनीतिक संघर्ष में परिवर्तित होता चला गया, जिसकी परिणति 1 मई 1960 को पृथक महाराष्ट्र राज्य की स्थापना के रूप में हुई। जिसके परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में जहाँ ब्राह्मणों का राजनीतिक वर्चस्व कमजोर होता गया वहीं राज्य में मराठों की राजनीतिक प्रधानता स्थापित हुई। इस संदर्भ में ए0जे0 दस्तूर कहते हैं–'जब महाराष्ट्र की स्थापना हुई, उसी दिन से महाराष्ट्र के राजनीतिक परिदृश्य, वहाँ के विशिष्ट वर्ग और राजनीतिक नेतृत्व में महत्वपूर्ण एवं आमूलचूल परिवर्तन हुये। सत्ता, प्रभाव व शक्ति तीनों ब्राह्मणों के हाथों से निकलकर मराठों के हाथों में पहुँच गयी।' महाराष्ट्र के उदय एवं राजनीतिक संक्रमण के इस दौर में 19 जून सन् 1966 को श्री बाला साहब ठाकरे द्वारा 'शिव सेना' की स्थापना की गयी, जो 'हिन्दू राष्ट्रवादी एजेण्डा' कर केन्द्रित तथा 'मराठी विचारधारा' का वाहक है।

इसके साथ–साथ मध्य प्रदेश, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, तेलंगाना, छत्तीसगढ़, हरियाणा आदि राज्यों में भी विभिन्न जातियों के मध्य राजनीतिक संघर्ष देखने को मिलता है। भारत में जातिवादी व्यवस्था ने समाज में समान वर्ग व समान जाति के लोगों को असमानता की स्थिति में लाकर समाज में व्याप्त वैमनस्यता की खाई को और अधिक चौड़ा किया है। इसलिए सभी जातियां व उपजातियां अलग–अलग राजनीतिक दलों का तथा अधिकांश राजनीतिक दलों द्वारा विभिन्न जातियों व उपजातियों का लाभ लेकर सत्ता एवं शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता रहा है, जिसके परिणामस्वरूप भारत में जातियों के आधार पर विभिन्न क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ। भारत में जातियां विभिन्न उपजातियों में विभाजित होती गयी हैं। आज निम्न जातियों मे।पदसोपान की स्थिति एक कटु सत्य बन चुकी है। यहाँ तक कि निम्न जातियों में 'नव–ब्राह्मणवाद' अर्थात् एक नवीन उच्च वर्ग की स्थिति बन गयी है। निम्न जाति के लोग भी दिखावेपन से प्रेरित होकर उच्च जातियों के उपनाम जैसे 'सिंह' शब्द का प्रयोग करनें लगे हैं, जिसमें सबसे बड़ा नाम उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमन्त्री श्री मुलायम सिंह यादव जी का है। बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में जहाँ एक तरफ फ्रांसिस फुकूयामा नें लोकतन्त्र को शासन के अन्तिम विकल्प व सर्वोत्तम विकल्प के रूप में मान्यता प्रदान करते हुए इतिहास के अंत की घोषणा की तो वहीं दूसरी तरफ वर्तमान में कई देश उत्तर आधुनिकता के युग से आगे निकलनें की स्थिति में हैं तो ऐसी स्थिति में भारतीय राजनीति पर जाति व्यवस्था के प्रभाव के सन्दर्भ में एक प्रश्न यह भी उभर कर सामनें आता है कि क्या भारत में जाति व्यवस्था की जड़ें कमजोर हुई हैं या फिर जातियों का केवल आधुनिकीकरण ही हुआ है।

उत्तर प्रदेश में जातिगत राजनीति

जातिगत राजनीति का व्यापक प्रभाव उत्तर प्रदेश की राजनीति में स्पष्टतः देख सकते हैं। स्वतंत्रता के कुछ वर्षों उपरान्त ही उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जातियों व समाज के पिछड़े वर्ग के लोगों को सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से संगठित करने के प्रयत्न प्रारम्भ हो गये, जिसमें उत्तर प्रदेश एक प्रमुख राजनीतिक मंच बन कर उभरा।

उत्तर प्रदेश में जातिगत राजनीति का आधुनिक दौर सन् 1971 में समाज के दलित, पिछड़े एवं अल्पसंख्यक वर्ग को सामाजिक एवं राजनीतिक मुख्यधारा से जोड़ने हेतु मान्यवर कांशीराम द्वारा ।ll India SC, ST, OBC and minority employees association के गठन से प्रारम्भ होता है, जो आगे चलकर सन् 1978 में BAMCEF (The all india backward and minority communities employees federation) के रूप में परिवर्तित हो गया। सन् 1981 में (आगे चलकर) मान्यवर कांशीराम द्वारा DS4 (DSSSS)- Dalit Shoshit Samaj Sangharsh Samiti का गठन किया गया। अन्ततः इन दलित, पिछड़े एवं अल्पसंख्यक वर्ग को सामाजिक एवं राजनीतिक मुख्यधारा से जोड़ने से सम्बद्ध विभिन्न उद्देश्यों को आत्मसात् करते हुए मान्यवर कांशीराम द्वारा 14 अप्रैल सन् 1984 को 'बहुजन समाज पार्टी' का गठन किया गया। शीघ्र ही यह पार्टी इस वर्ग में अधिक लोकप्रिय हो गयी किन्तु अपनी नीतियों व विचाराधारा के रूप में यह मुख्यतः दलितों की पार्टी के रूप में उभर कर आयी। ध्यातव्य है कि बहुजन समाज पार्टी ऐसी पहली पार्टी है जिसकी नींव नौकरी करने वाले दलित मध्यम वर्ग द्वारा रखी गयी। पार्टी का मुख्य उद्देश्य– दलितों के उत्थान, न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व व आत्मसम्मान की भावना को स्थापित किया जाना है। इसके अन्तर्गत इस पार्टी द्वारा निम्नलिखित कार्य–योजना रखी गयी–

- दलित, वंचित एवं पिछड़े वर्ग के पिछड़ेपन को समाप्त करना।
- शोषण के विरूद्ध संघर्ष।
- समाज एवं सार्वजनिक जीवन में इस वर्ग की स्थिति में सुधार।
- इनके दिन प्रतिदिन के जीवन स्तर में सुधार।

मान्यवर कांशीराम द्वारा बहुजन समाज पार्टी के तत्वाधान में स्थापित उपरोक्त लक्ष्यों की प्राप्ति, राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति एवं वोटों की प्राप्ति हेतु किसी भी पार्टी के साथ गठबन्धन करने हेतु तैयार थी, जैसा कि सन् 1995 व सन् 2002 में भारतीय जनता पार्टी तथा सन् 1997 में समाजवादी पार्टी के साथ गठबन्धन में परिलक्षित होता है। इतना ही नहीं सन् 1990 में बहुजन समाज पार्टी द्वारा सामाजिक न्याय के मसीहा के रूप में स्थापित हो चुके श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के बजाए देवीलाल व चन्द्रशेखर को समर्थन दिया गया, जो बहुजन समाज पार्टी के उषा काल में उसके 'अवसरवादिता की राजनीति' से सम्बद्ध विचारधारा को दर्शाता है। ध्यातव्य है कि सुश्री मायावती के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश में चार बार बहुजन समाज पार्टी सत्ता में रही है तथा सन् 2007 के राज्य विधानसभा चुनाव में पार्टी पूर्ण बहुमत के साथ सत्ता में आयी, जिसमें 'दलित–ब्राह्मण गठजोड़' के रूप में बसपा द्वारा अपनाये गये 'सोशल इंजीनियरिंग फार्मूला' की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण थी। वर्तमान में बहुजन समाज पार्टी को न केवल राष्ट्रीय पार्टी की मान्यता प्राप्त है बल्कि 'मत–प्राप्ति' के आधार पर यह भारत की तीसरी सबसे बड़ी पार्टी भी है, जिसका जनाधार उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, पंजाब, हिमांचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, उड़ीसा आदि राज्यों तक विस्तृत है। कभी 'बहुजन हिताय–बहुजन सुखाय' का नारा देने वाली पार्टी आज 'सर्वजन हिताय–सर्वजन सुखाय' की ओर नीतियों पर आगे बढ़ रही है।

लोकतांत्रिक समाजवादी, आर्थिक समाजवाद, सामाजिक समानता आदि उद्देश्यों के साथ श्री मुलायम सिंह यादव 10 अप्रैल सन् 1992 में एक अन्य वर्ग आधारित राजनीतिक दल– समाजवादी पार्टी का गठन किया गया। पार्टी की नीतियाँ मुख्यतः राम मनोहर लोहिया एवं जनेश्वर मिश्र की विचारधाराओं से विशेष रूप से प्रभावित रही है। यद्यपि कि उत्तर प्रदेश की राजनीति में यह दल पिछड़ा वर्ग के लोगों को एक राजनीतिक मंच प्रदान करता है किन्तु समाजवादी पार्टी का जनाधार मुख्यतः यादव व मुस्लिम वर्ग पर ही केन्द्रित रहा है।

पिछले दो दशकों में उत्तर प्रदेश की राजनीति मुख्यतः बहुजन समाज पार्टी व समाजवादी पार्टी के मध्य सत्ता के लिए संघर्ष का केन्द्र बनी रही तथा इस काल में अधिकांश समय इन्हीं दो राजनीतिक दलों के नेतृत्व में सरकारें बनीं। वर्तमान में उत्तर प्रदेश में श्री योगी आदित्य नाथ के नेतृत्व में भारतीय जनता

पार्टी की सरकार कार्यरत् है।

निष्कर्ष

जाति व्यवस्था भारतीय समाज पर इतना प्रभावी है कि इसी के माध्यम से भारत में कतिपय मतदान व्यवहार का निर्धारण होता है, इसी के प्रभाव में लोगों द्वारा राजनीतिक निर्णय लिये जाते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो भारतीय समाज एवं लोकतंत्र में जातिगत भावना के प्रभाव में ही राजनीतिक व्यवहार की व्याख्या की जाती है जबकि यह भारतीय राजनीति के निर्धारक तत्वों में एकमात्र निर्धारक तत्व न होकर मात्र एक निर्धारक तत्व हैं। अनुभव यह बताता है कि भारत में विभिन्न जातियों को राजनीतिक दलों द्वारा सत्ता की चाबी के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा है। भारतीय लोकतंत्र एवं भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के समीक्षात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि ऐसा नहीं है कि राजनीति में जातियों का इस्तेमाल किया गया है बल्कि स्वयं जातियाँ भी राजनीति का इस्तेमाल करती रही हैं। इसके अतिरिक्त समय के साथ–साथ जातियों का ही स्वरूप भी बदलता जा रहा है, जिसे रूडोल्फ 'परम्परा के आधुनिकीकरण; के रूप में परिभाषित करते हैं तो वहीं एम0एन0 श्रीनिवास इस परिवर्तन को 'संस्कृतिकरण' के अन्तर्गत व्याख्यायित करते हैं। किन्तु भारतीय राजनीति में जातिगत भावना की जड़े जिस प्रकार गहरी जमीं हुई हैं वे इस बात की पुष्टि करती हैं कि भारतीय समाज से 'जातिवादी विकलांगता' एवं 'भारतीय राष्ट्रवाद की सबसे कमजोर कड़ी के रूप में स्थापित हो चुकी जातिवादी भावना' से आने वाले कुछ वर्षों यहाँ तक कि दशकों में भी आसानी से पीछा नहीं छुड़ाया जा सकता है। किन्तु दूसरी तरफ शिक्षा, रोजगार एवं विकास के परिणामस्वरूप युवाओं की बदलती हुई भूमिका एवं मानसिकता के प्रभाव में इस बात से इंकार भी नहीं किया जा सकता कि समय के साथ भारत में जातिगत असमानता, भेदभाव आदि से प्रेरित भावनाएँ कमजोर हुई हैं। आज भारतीय राष्ट्रवाद की भावना से प्रेरित हर व्यक्ति के मन में यह प्रश्न जरूर उठता है कि जातिगत राजनीति के प्रभाव से भारतीय लोकतांत्रिक प्रक्रिया को कैसे बचाया जाए। इस सम्बन्ध में हम यह कह सकते हैं कि आज आवशकता इस बात की है कि हमारे कर्म, हमारी पहचान, हमारी प्रेरणा आदि सभी का निर्धारण हमारी जाति से न होकर हमारे व्यक्तित्व व हमारी क्षमता से हो। इसके साााथ–साथ सर्व सुलभ शिक्षा की जगह 'एक अच्छी शिक्षा की सर्व सुलभ व्यवस्था' हो, क्योंकि जब तक हम तार्किक नहीं बनेंगे तब तक इस समस्या का समाधान पाना कठिन है। वर्तमान सरकार इस दिशा में प्रयासरत् भी है।

सन्दर्भ

1. काश्यप, डॉ0 सुभाष, विश्व प्रकाश गुप्त– राजनीति कोष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय (दिल्ली), अगस्त, 2015.
2. सईद, एस0 एम0ः भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेंटर, लखनऊ, 2015.
3. सिन्हा, मनोजः समकालीन भारत एक परिचय, ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2014.
4. कोठारी, रजनी– भारत में राजनीतिः कल और आज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007.
5. प्रो0 एम0 पी0 सिंह– भारतीय शासन एवं राजनीति, ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2011.
6. चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी व आदित्य मुखर्जीः आजादी के बाद भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय (दिल्ली), फरवरी 2015.
7. गाबा, ओम प्रकाश, राजनीति–चिन्तन की रूपरेखा, नोएडा, मयूर पेपर बैक्स, 2012.
8. लक्ष्मीकांत, एम0– भारत की राजव्यवस्था, चेन्नई, मैक्ग्रा हिल एजूकेशन (इण्डिया) प्रा0लि0, 2017
9. भारत, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2018
10. बसु, डॉ0 दुर्गा दास– भारत का संविधान : एक परिचय, गुरूग्राम (गुड़गाँव), हरियाणा, लेक्सिस–नेक्सिस, 2015
11. पाण्डेय, तेजस्कर, संगीता पाण्डेय– भारत में सामाजिक समस्याएं, नयी दिल्ली, टाटा मैक्ग्रा हिल एजूकेशन प्रा0 लि0, 2012
12. द हिन्दू